

भारतीय संगीत में निरर्थक शब्द—एक अर्थपूर्ण सिद्धांत

रेनु गुप्ता

सहायक प्रोफेसर, कालिंदी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार

प्रस्तुत शोधपत्र में, शुष्काक्षरों का सौन्दर्य एवं अर्थ का एक संक्षिप्त आधार हमने समझने का प्रयत्न किया है। इस स्थल पर हम यह मान कर चले हैं कि निरर्थक अथवा सार्थक, इन शब्दांशों का उद्गम भाषा के उद्गम के साथ ही आदि काल से हुआ है। विश्वभर में, संगीत या काव्य, किसी भी विधा में किसी न किसी रूप से ये विद्यमान हैं। वैदिक संगीत में स्तोभाक्षर नाम से संबोधित, नाट्य शास्त्र में निर्गीत एवं बहिर्गीत के अर्थ में वर्णित, संगीत रत्नाकर में तेनक एवं पाटाक्षरों के अंतर्गत आने वाले इन शब्दांशों का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अमीर खुसरो का संदर्भ एवं प्राचीन समय से वर्तमान तक का बदलता स्वरूप और फलतः एक समूची गायकी के रूप में शुष्काक्षरों का रूप इस शोध पत्र में वर्णित किया गया है। अमरीका, चीन, ग्रीस इत्यादि देशों में निरर्थक शब्दांशों अथवा शब्दों को किस रूप में ग्राह्य किया गया है, यह भी जानने की चेष्टा इस शोध में की गई है। उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित तराना तथा तिल्लाना गायन विधाओं तथा नृत्य के साथ इनकी परस्परता पर भी विचार किया गया है।

संकेत शब्द

शुष्काक्षर, स्तोभाक्षर, निरर्थक, अर्थपूर्ण, शब्दांश

संगीत शास्त्र, संगीत व साहित्य का दर्शन तथा विज्ञान है। यह संगीत कृतियों के चिंतन, मनन व विश्लेषण के आधार पर समयानुसार उद्भावित सिद्धांतों की ज्ञान—राशि है। युगानुरूप परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार से संगीत व साहित्य के कथ्य और शिल्प में बदलाव आता रहा है। भारत में वैदिक काल, भरत तथा शारंगदेव के सिद्धांतों से लेकर आज तक के सिद्धांतों के ऐतिहासिक अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

शब्द एवं शास्त्र की परस्परता पारंपरिक है। शब्द का सागर अथाह है और यदि अर्थ की चर्चा करें तो उससे भी असीम। शब्द के निर्माण और उससे निकलने वाली ध्वनि में अर्थ की क्या भूमिका है, यह विचारणीय है। शब्द और अर्थ का स्वाभाविक एवं सहज संबंध प्रत्यक्ष नज़र नहीं आता। भाषा, ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसे अलग—अलग समाज ने अपने—अपने ढंग से विकसित किया है। पानी

कहते ही किसी तरल पदार्थ का बोध होता है और शेर कहने पर किसी विशेष पशु का बोध क्योंकि एक विशेष समाज इन शब्दों को एक विशेष अर्थ में लेता है। वहीं किसी दूसरे समाज के लिए तरल पदार्थ का द्योतक कोई दूसरा शब्द है, तथा 'शेर' शब्द पशु का बोध न कराकर, कविता की ओर इंगित करता है। भारतीय वाङ्मय में शब्द और अर्थ के संबंध को विशेष महत्व दिया गया है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने शब्द और अर्थ के संबंध में कहा है—

“गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।” तुलसी कहते हैं कि शब्द और अर्थ का संबंध उसी प्रकार है जैसे जल और लहरों का जिन्हें एक दूसरे से भिन्न नहीं कहा जा सकता। लहरों से ही प्रतीत होता है कि जल में कितना प्रवाह या हलचल है। अर्थ भी सीमाओं की परिधि से परे हैं। अर्थ की अभिव्यक्ति हर बार नई होती है। एक नया रूप धारण करती है।

आचार्य ठाकुर जयदेव सिंह अपनी पुस्तक भारतीय संगीत का इतिहास में संगीत एवं भाषा के उद्भव में भाव-व्यंजक ध्वनि (Interjectional Cry) को मान्यता देते हुए कहते हैं कि भाव व्यंजक ध्वनि ही भाषा और संगीत दोनों का मूल है। भावाभिव्यक्ति की अभिलाषा दोनों के उद्गम एवं विकास का कारण रही है। पशु-पक्षी भी अपने भाव को व्यक्त करने के लिए विशेष काकु (भावव्यंजक ध्वनिविकार) का उपयोग करते हैं। बिल्ली जब भूखी होती है तब एक विशेष 'काकु' से ध्वनि करती है: जब वह अपने बच्चे की मृत्यु के समय 'म्याऊँ' करती है तब उसका रुदन हमें सुनाई देता है। इसी प्रकार सभी पशु-पक्षी भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग ध्वनियों के द्वारा अपने भावों को प्रदर्शित करते हैं। जब प्रकृति के ये जीव ध्वनि विविधताओं से भिन्न-भिन्न भावों को व्यक्त करने का सामर्थ्य रख सकते हैं तो मनुष्य के सामर्थ्य का तो कहना ही क्या! अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा और संगीत, दोनों का उद्भव भावव्यंजक ध्वनि से ही हुआ है।

भाव के घनीभूत होने की अवस्था में तथा उपयुक्त कण्ठ मिलने पर, भावाभिव्यक्ति के लिए जो ध्वनि निकलती है वह स्थिरता और नियमितता को धारण कर लेती है अर्थात् स्वर का प्रस्फुटन होता है। आदिकाल में मनुष्य जब शब्द या भाषा का निर्माण नहीं कर पाया था तब भी वह ध्वनि या ध्वनि-विकार से अपने भावों को व्यक्त करता रहा। इस ध्वनि-भंगी को अति प्राचीन काल में 'स्तोभ' (Interjectional Cry) के नाम से जाना जाता था। 'स्तोभ' की ध्वनि समान रूप से अहा, हो, हाउ, ओहा, हे, ल, ल, य, ल, हुम्, हाँ, हाँ इत्यादि है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि शब्दों के अभाव में पहले, इन्हीं स्तोभों के माध्यम से मनुष्य गान जगत् में प्रतिध्वनित हुआ।

वैदिक संगीत में सामगान के लिए ऋग्वेद के मंत्रों का प्रयोग किया गया, यह सर्वविदित है। परंतु ऋग्वेद के मंत्रों को यथावत् उपयोग न करके, उनमें समुचित विकार अर्थात् परिवर्तन कर उनका गान किया जाता था। छः प्रकार के ये विकार हैं—विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम एवं स्तोभ। 'स्तोभ' के विषय में कहा गया है कि "अधिकत्वे सति ऋग्विलक्षणवर्णः" अर्थात् ऋचा के जो अक्षर हैं उनसे भिन्न विलक्षण अक्षरों का प्रयोग स्तोभ कहलाता है। ये अक्षर उद्गारवाचक होते हैं अर्थात् किसी

अभिव्यक्ति या मनोभाव को इंगित करते हैं। यथा ऋचा गाते समय अपनी ओर से 'औहोवा, हाउ हाउ' इत्यादि अक्षरों को मिला देना 'स्तोभ' विकार के अंतर्गत आता है। ऐसा माना जाता है कि सामवेद के ये ही उद्गार वाचक शब्द लोक संगीत में आ गए हैं। लोक संगीत में पाए जाने वाले शब्द हाँ हाँ, अरे हाँ, भला, हे, ओहो, अररर, लललल, हे नोनि इत्यादि भावव्यंजक शब्द, वैदिक स्तोभाक्षरों के ही रूपांतरण मात्र हैं। कुछ भाषाकारों ने इन्हें निरर्थक कहा है, क्योंकि ये कोई जाति-वाचक संज्ञा या शब्द का बोध नहीं कराते अपितु भावोद्गार एवं उद्बोधन प्रतीत होते हैं। ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार यदि भाषा के ही आदि का ज्ञान हो जाए तो कदापि यह नहीं कहा जा सकता कि स्तोभाक्षर निरर्थक हैं।¹²

आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र (पाँचवी शताब्दी) में निरर्थक वर्णों की योजना से गाए जाने वाले इन गीत प्रकारों को निर्गीत की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार जिनमें सार्थक शब्दों के स्थान पर निरर्थक शुष्काक्षरों या स्तोभाक्षरों का प्रयोग हो, वे निर्गीत या बहिर्गीत कहलाते हैं। निर्गीत का अर्थ निरर्थक गीत है। जिसके आविष्कारक नारद हैं। जब यह असुरों द्वारा अपनाया गया तब देवताओं ने इसे बहिर्गीत कहना आरम्भ कर दिया। भरत मत के अनुसार स्तोभाक्षरों या शुष्काक्षरों का उपदेश ब्रह्मा ने किया है। ये दस स्तोभाक्षर कुछ इस प्रकार हैं—

**झण्टुं, जगतिप, वलितक, कुचझल, गितिकल, पशुपति, दिगिनगि, दिग्रे, गणपति, तिचा।¹³
धातुभिश्चित्रवीणायां गुरुलघ्वक्षरान्वितम्। वर्णालंकारसंयुक्तं प्रयोक्तव्यं बुधैरथ॥**

अर्थात् इस निर्गीत का धातु तन्तुओं से युक्त 'चित्रवीणा पर निपुण वादकों द्वारा वर्ण-अलंकारों तथा गुरु एवं लघु वर्णों से युक्त प्रयोग किया जाता है।

निर्गीतं गीयते यस्मादपदं वर्णयोजनात्। असूयया च देवानां बहिर्गीतमिदं स्मृतम्।¹⁴

अर्थात् यह शब्द या पद रहित केवल निरर्थक वर्णों की योजना से गाए जाने के कारण निर्गीत कहलाता है और यही देवगणों की असन्तुष्टि के कारण बहिर्गीत भी कहलाता है।

दत्तिल मुनि द्वारा रचित ग्रंथ 'दत्तिलम' के अनुसार—

वाद्यं यद्गीत वृत्तिस्थमगीतं सम्प्रयुज्यते। वैचित्र्यार्थं प्रयोगज्ञैः शुष्कं तदभिधीयते।¹⁵(द.48)

अर्थात् वाद्य का गीत में स्थित अगीत (स्वर रहित) में मिल जाता है और पृथक अर्थ को दर्शाता है। इसे शुष्क कहते हैं।

आचार्य शारंगदेव के अनुसार प्राचीन शुष्काक्षर कुछ इस प्रकार हैं—

झण्टुं जगतिप, बलिकित कुचझल तितिझल, पशुपति दिगिदिगि वादिगोंग गणपति तितिधा।

झण्टुं के स्थान पर ऋटुं, दिगिदिगि के स्थान पर 'दिग्ले', 'तितिधा' के स्थान पर 'तेचाम्' या 'तेन्नाम्' पाठ भी मिलते हैं। ओंकार और स्वर-व्यंजनयुक्त 'हकार' की गणना भी स्तोभाक्षरों में है।

ये स्तोभाक्षर पादपूर्ति के लिए भी उपयोगी हैं और ये सार्थक शब्दों की भांति छन्दोबद्ध भी हो सकते हैं।

शुष्काक्षरयुक्त एक विशिष्ट छंद का रूप नौ गुरु, छः लघु और तीन गुरु है। उदाहरण इस प्रकार है—

S	S	S	S	S	S	S	S	S
1	2	3	4	5	6	7	8	9,
दि	ग्ले	दि	ग्ले	झं	टुं	झं	टुं	उं
1	1	1	1	1	1	S	S	S
1	2	3	4	5	6,	1	2	3
बु	क	व	लि	त	क,	ते	ते	न्नाम्

इस छंद में सार्थक पदों की योजना भी सम्भव है और प्रत्येक छंद में शुष्काक्षरों की भी योजना सम्भव है। इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यों के पाटाक्षरों (बोलों) से भी छंद का निर्माण सम्भव है।

मध्ययुग के शास्त्रीय संगीत में इन शुष्काक्षरों को प्रबंध के छः अंगों में से, तेनक एवं पाट के समान रूप में भी देखा गया।

तेन — 'तत्' शब्द ब्रह्म का वाचक माना गया है। तत् का तृतीया विभक्ति में एकवचन रूप 'तेन' है जिसका अर्थ है 'उस कारण से'। इसी तेन से प्रबंध में तेन या तेनक का ग्रहण हुआ है जिसका अर्थ है "मंगल अर्थ का प्रकाशक"। जैसे, 'ओं तत् सत्' या 'तत्त्वमसि' में तत् ब्रह्म का वाचक है। तत् के तृतीया रूप तेन में प्रबंध के उन सभी शब्दों का ग्रहण हो जाता है जो मंगल अर्थ के वाचक हैं। संगीत रत्नाकर के अनुसार—

तेनेतिशब्दस्तेनः स्यान्मंगलार्थप्रकाशकः ।

ओं तत्सदिति निर्देशात्तत्त्वमस्यादिवाक्यतः ।।

तदिति ब्रह्म तेनायं ब्रह्मणा मंगलात्मना ।⁶

पाट — वाद्यों के अक्षरों के समूह को पाट कहा गया है—'पाटो वाद्याक्षरोत्करः।' पाटाक्षर सामान्यतः, हाथ से बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्यों द्वारा उत्पन्न 0 माने गए हैं।

तेरहवीं सदी के हजरत अमीर खुसरो, जो कि एक शायर, गायक व संगीतकार माने जाते थे, उन्हें प्रचलित तराना गायकी के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। इस संबंध में कुछ किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं। इन्होंने अपनी कल्पना शक्ति से फ़ारसी के शब्दों से तराना की रचना की। तराना में प्रयुक्त होने वाले बोल या शब्द फ़ारसी के हैं या आदि काल से चले आ रहे स्तोभाक्षरों, तेनक अथवा पाटाक्षरों का अपभ्रंश है यह सदा से चर्चा का विषय रहा है।

कहा जाता है कि सबसे पहले उन्होंने फारसी भाषा के नरम व्यंजनों (soft consonants) को लिया और दूसरा उनको इस तरह सजाया कि उनका सुन्दर अर्थ निकल सके। इसमें जरूरत के अनुसार थोड़े हिन्दी के शब्द भी डाले। आधुनिक तराना के कुछ शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—

- 1) दानी — Thou Knowest/तुम जानते हो
- 2) यालाला — Ya Allah/ या अल्लाह
- 3) जानतनम् — Indicative of anger
- 4) देरेना — फारसी शब्द देशीनाह से लिया जिसका अर्थ है पुराना या अनुभवी
- 5) दिया — अर्थात् हिन्दी में देना
- 6) नादिर — फारसी शब्द जिसका अर्थ है अनुपम
- 7) यालाली — या अली

पंडित कृष्ण नारायण तैलंग के अनुसार तराना, जिसका प्राचीन नाम निर्गीत या बहिर्गीत था, अमीर खुसरो की रचना नहीं हैं। उसके कर्ता नारद हैं। समयानुसार उसके रूप में परिवर्तन होता रहा। प्रबंध काल में प्रबंध के समान, ध्रुपद काल में ध्रुपद के साथ और ख्याल काल में ख्याल के समान तरानों और त्रिवट को गाने की परिपाटी चली। अमीर खुसरो फारसी, अरबी और तुर्की के विद्वान थे व ईरानी संगीत के सैद्धांतिक व व्यवहारिक रूप से परिचित थे। संभव है, निर्गीत से मिलते-जुलते किसी गीत का गान ईरानी या फारसी संगीत में होता रहा हो, इसलिए खुसरो के साथ भारतीय निर्गीतों को भी फारसी भाषा के तराना शब्द से सम्बोधित किया जाने लगा। संस्कृत भाषा के अप्रचार के साथ संस्कृत नाम भी अप्रचलित हो गया और तराना अधिक प्रचार में आ गया। वास्तव में तराना का निर्माण लोकगीतों, प्रबंध के पाट, तेनक अवयव और वैदिक स्तोत्राक्षरों के प्रयोग के आधार पर किया गया है।⁷

संगीत की सभी विधाओं में, विशेषकर प्राचीन समय से चलती आ रही विधाओं में, गीत के शब्द अथवा शब्दांशों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कई बार अपनी-अपनी भाषाओं में इन शब्दों का अनुवाद भी किया गया है। परंतु जब भी ऐसे शब्दों का रूपांतरण संभव न हो सका तब-तब उन्हें पुरातन की श्रेणी में रखकर छोड़ा गया है। ऐसा मुख्यतः उन गान विधाओं या गीतों में पाया गया है जहाँ ये गीत या शैली मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाई गई। और जहाँ समय के साथ, भाषा ज्ञान में बदलाव आया या वो लुप्त हो गई।

निरर्थक शब्दों की इस अर्थपूर्ण यात्रा में यदि सुदूर प्रशांत पश्चिमी तट की ओर देखें तो वहाँ रहने वाले लोग, जो 'इंडियन' (Pacific North-West Indians) कहलाते हैं, एक गीत गाते हैं जिसका नाम 'हमत्सा' (Hamatsa) है, जिसके आधार शब्दांश कहलाते हैं 'हमा हैम' (Hama Hem)। हमत्सा एक पुरुष प्रधान समाज है जिसकी रक्षा नरभक्षी आत्माएँ (Cannibal Spirits) करती हैं। इन पुरुषों को 'जंगल के जंगली पुरुष' यह संज्ञा भी दी जाती है।

देशीय संगीत में कुछ शब्दांश ऐसे होते हैं जो बार-बार दोहराए जाते हैं और जिनके विषय में ऐसी धारणा बन जाती है कि उनका कोई अर्थ नहीं है। Ida Halpern अपने लेख में लिखती हैं कि निरर्थक शब्दों के विषय में मेरी भी यही धारणा थी परंतु लगता था कि इनके भीतर कुछ महत्वपूर्ण है जो अनदेखा हो रहा है। उनकी बात को पुष्टि मिली 1947 में जब उन्होंने क्वाक्यूटल (Kwakuitl) के मुखिया बिली आसू (Billy Assu) से एक हमत्सा गीत सुना।

किसी की मष्पु के अवसर पर गाए जाने वाले गीत के शब्दांश हैं—A na nai (I am hurt)

प्रतिच्छाया गीत (Ghost songs) के बोल हैं—

Ja ha mai
Ja ha ha ma
Ja ha ha
Hai tsonoqa
Ja ha mai.⁸

एक नवजात शिशु के मुख से निकलने वाले पहले शब्द या निश्चित रूप से कहें तो ध्वनि कुछ इसी प्रकार के ला, ना ता जैसी होती है। यह ध्वनि इतनी सहज और प्राथमिक होती है कि बड़ी सरलता से इसे निरर्थक व असंगत समझ कर छोड़ दिया जाता है। हालांकि यह गैर शाब्दिक ध्वनि अफ्रीकी, देशी अमरीकी (Native American) और यहाँ तक कि आधुनिक अमरीकी (Modern American) संगीत में पाए जाते हैं जिन्हें वे 'वोकेबल्स' (vocables) कहते हैं। ये किसी अनभिज्ञ सुनने वाले को अर्थहीन लगेंगे परंतु गीत के लय व ताल को उभारने व सम-स्वरीय (Homophonic sound) आभास देने में सक्षम होते हैं।

देशी अमरीकी (Native American) जन-जातियों में 'ऐरापहो' नामक जाति के पारंपरिक गीतों में धार्मिक एवं लौकिक गीत पाए जाते हैं। ब्रूनो नैटल (Bruno Nettl) अपने लेख में इनके विषय में बताते हैं कि इन गीतों के दो प्रकार दिखाई देते हैं—

- 1) निरर्थक शब्दों वाले गीत
- 2) अर्थपूर्ण शब्दों वाले गीत

इन गीतों में अर्थपूर्ण शब्दों की अपेक्षा निरर्थक शब्दों वाले गीतों का बाहुल्य है। इन गीतों की विस्तृत जानकारी इस शोध में दी गई है।⁹

कुछ इसी प्रकार चीनी सभ्यता के पारंपरिक गान "कैन्टोनीस ओपेरा (Cantonese Opera) में गायक कुछ अतिरिक्त शब्दांशों का प्रयोग करते हैं। इन शब्दांशों (extra syllables) को वे "Ch'entzu" या "पैडिड सिलेबल" (padded syllables) का नाम देते हैं। उनका मानना है कि बेस सिलेबल (Base syllables) (Cheng tzu) जहाँ गीत में सार बताते हैं वहीं, पैडिड सिलेबल, उसे स्पष्ट और विस्तृत करने

का कार्य करते हैं। ये या तो कवि द्वारा लिखे जाते हैं या गायक द्वारा समयस्फूर्त (extempore) भी लिए जाते हैं।¹⁰

यूनानी सभ्यता भी निरर्थक शब्दों के उद्गम के विषय में अस्पष्ट है। यूनानी दार्शनिकों एवं ज्ञानात्मक चिकित्सकों (Gnostic Papyri) के लेखों से पता चलता है कि यूनानी वर्णाक्षरों से बने ये निरर्थक शब्द पुरातन समय से चले आ रहे सरगम के एक विशेष सिद्धांत (solmization) को इंगित करते हैं।

कई विद्वानों ने इस विषय में अनिर्णायक तथ्य प्रस्तुत किए हैं कि इन निरर्थक शब्दों की उत्पत्ति यूनानी वर्णमाला से पहले हुई या ये सीरिया अथवा चेल्डिया (10वीं शताब्दी के अंत या 6वीं शताब्दी के पूर्व ईसा पूर्व के बीच अस्तित्व में था) से लिए गए। निरर्थक शब्दों की उपस्थिति प्राचीन ग्रीस और बाइजैन्टियम (Byzantium) के संगीत में देखी जाती है जहाँ सात ग्रीक स्वर वर्णों को ज्ञानात्मक संगीत के लिए प्रयोग किया जाता है। इस संबंध में जो पहला आलेख मिलता है वह है—Handbook of Harmonics by Nichomachus of Gerasa. जो दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व का है।¹¹

कुछ भारतीय प्राचीन विधाओं—यथा चारों वेद, ज्योतिष एवं संगीत का स्वाध्याय एवं अध्ययन, पोषण एवं संवर्द्धन गुरुमुख शिक्षण—प्रणाली से ही सम्भव हो सका है। आज हमें इनका जो भी स्वरूप उपलब्ध है, उसमें गुरु—शिष्य परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कठोर अनुशासन एवं कठिन अभ्यास द्वारा एक—एक राग में कई चीजें सिखाना तथा विश्लेषण करना शिक्षण प्रणाली का मूल सिद्धांत रहा है जिसके कारण भारत में समष्टि गायन—परंपरा आज तक विद्यमान है।

इसी परम्परा के अंतर्गत ध्रुवपद व ख्याल के अतिरिक्त, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में गायन की अन्य विधाएँ—तराना, टप्पा, ठुमरी, चतुरंग, त्रिवट, राग मालिका आदि भी आती हैं। इनमें तराना चमत्कार युक्त आकर्षक गान—शैली के रूप में प्रसिद्ध है। गायकी व तंत्रकारी का समन्वित रूप इस शैली में दृष्टिगोचर होता है। अपनी वैचित्र्यपूर्ण, चंचल और उत्साहवर्धक प्रकृति के कारण यह शैली शीघ्र ही सुनने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती है। ख्याल की भांति तराना गायकी में भी तानें व बोल तानें ली जाती हैं; अंतर केवल यही है कि ख्याल में प्रयुक्त गीतों का एक अर्थ होता है जबकि तराना अपनी निरर्थक शब्द रचना के ही कारण सुप्रसिद्ध है। तराना गान, भाव—प्रधान गायन न होकर वैचित्र्य प्रधान है। भारत की दोनों मुख्य संगीत—प्रणालियों (उत्तरी तथा दक्षिणी) में इसका प्रयोग होता है।

वाद्यों की भांति तराना गायकी की चार श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं—

- 1) केवल—शुष्काक्षर समन्वित
- 2) गीतानुगत अर्थात् गीत का अनुसरण करने वाला
- 3) नष्टानुगत अर्थात् नष्ट्य का अनुसरण करने वाला
- 4) गीत—नष्ट्यानुगत अर्थात् गीत और नष्ट्य का सम्मिलित रूप से अनुसरण करने वाला।¹²

सर्वप्रथम शुष्काक्षर युक्त तरानों को वाद्यानुगत भी कह सकते हैं, क्योंकि इसे किसी भी वाद्य के साथ अनुकूल पाटाक्षरों से युक्त होकर प्रदर्शित कर सकते हैं। त्रिवट में यह रूप दृष्टिगोचर होता है। त्रिवट का प्राचीन रूप कैवाड़ प्रबंध भी कहा जाता है। प्राचीन काल में वाद्यजन्य आनन्द प्राप्ति के लिए इस प्रबंध का प्रयोग किया जाता था। गीतानुगत तराना वह है, जिसमें सार्थक गेय रचना के बीच-बीच में छंद पूर्ति, ताल पूर्ति एवं पद-सौंदर्य की अभिवृद्धि के लिए उसका प्रयोग किया जाता है। 'नृत्यानुगत तराना' उसे कहते हैं, जो नृत्य के साथ ताल और लय से युक्त होकर गाया जाए। इसमें ताल, वाद्य तथा घुँघरूओं के पाटाक्षरों का समन्वय रहता है; जैसे-तकधिलांग, तिगदादिगदिग, छोम छननन इत्यादि। 'गीतनृत्यानुगत तराना' में नृत्य-गीत के साथ शुष्काक्षरों का प्रयोग किया जाता है जो भरतनाट्यम नृत्य प्रणाली में तिल्लाना रूप में प्रचलित है। मआदनुलमौसीकी ग्रंथ में तराने के बोलों के संबंध में कहा है कि इसकी भाषा आठ वर्णों से बनती है—(1) त (2) द (3) न (4) आ (5) य (6) म (7) र (8) ओ।

रूबाई

**"आरोज के रूहे पाक के आदम बबदन
हर चन्द दरॉनमी सुदस्तर्सबदन
ख्वानन्द पलाएकां बलहने दाऊद
दरा-दरा दरतन दराद दरतन-दरतन"**

उस्ताद अमीर खाँ तराने की शुरुआत को अमीर खुसरो की इस रूबाई से जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि ना दिर दानी तो दानी – एक किस्म का जप है, जिसे सूफी लोग 'हाल' की अवस्था में दुहराते थे। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में कई गायकों ने तराना गायकी को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। तराने के रचयिताओं में बहादुर हुसैन खाँ, तानरस खाँ, नत्थू खाँ इत्यादि प्रसिद्ध हैं। उस्ताद अमीर खाँ, निसार हुसैन खाँ, पं. विनायक राव पटवर्धन, उ. चाँद खाँ, पं. श्री कृष्णराव पंडित, उ. अब्दुल करीम खाँ आदि अनेक विभूतियों का नाम तराना गायकी से जुड़ा है। तराने विभिन्न तालों में, विभिन्न लयों में बाँधे गए हैं।

कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में गाई जाने वाली अनेक शैलियों में तिल्लाना एक रोचक, चमत्कारपूर्ण एवं मधुर शैली है जो गायन एवं नृत्य दोनों में दिखाई देती है। कुछ पुरानी पुस्तकों में इसे तिरि तिल्लाना के नाम से भी पाया गया है।¹³ किसी भी प्रदर्शन के अंत में यह प्रस्तुत की जाती है। इसे अधिकतर नृत्य के साथ जोड़ा गया है तथा 'ति-ला-ना', इन शब्दांशों को ताल बद्ध रूप में प्रस्तुत करना इसका आधार माना गया है। कहा जाता है कि उत्तर भारतीय संगीत में इसका उद्गम हुआ तत्पश्चात् दक्षिण भारत में भी इसका प्रचलन बढ़ गया। वहाँ भी पहले यह एक गायन शैली थी और बाद में नृत्य के साथ इसका समन्वय हुआ। इसकी प्रसिद्धि का कारण है इसमें प्रयोग किए जाने वाले (1) शब्दांश त क त रि कि ट न क (2) साधारण शब्दांश (3) अल्प मात्रा में साहित्य।

एक अन्य मत में तिल्लाना का उद्गम तराना से हुआ जो तंजावूर में मराठा शासकों के समय

प्रचलित था। परंतु तिल्लाना के तत्व मध्यकालीन कर्नाटक संगीत के गीतों में भी पाए गए हैं। तिल्लाना में संगीत तुलनात्मक रूप से धीमी गति का होता है जो नृत्य प्रयोजनार्थ होता है। पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरन से संयोजित अनेक तिल्लाना पाए जाते हैं।

कौन से शब्द अर्थपूर्ण हैं और कौन से निरर्थक, इसका कोई मापदण्ड नहीं बना है। कुछ शब्द किसी के लिए महत्वपूर्ण हैं तो कुछ किसी और के लिए। जो व्याकरण के नियमानुसार कहा गया, जिसने भाषा का कोई नियम, रीति उल्लंघन न किया हो, क्या वे ही सार्थक शब्द हैं। प्रेम व भावनाओं के उद्गार इन नियमों से परे हैं। सतही स्तर पर भले ही वे खरे न उतरें परंतु गहराई में अवश्य कुछ है जो निरर्थक नहीं है।

पाद टिप्पणी

- 1 सिंह, ठाकुर जयदेव (1994) भारतीय संगीत का इतिहास. कलकत्ता : संगीत रिसर्च अकादमी. पृ. सं.-2
- 2 सिंह, ठाकुर जयदेव (1994) भारतीय संगीत का इतिहास. कलकत्ता : संगीत रिसर्च अकादमी. पृ. सं.-
- 3 बह्मस्पति, आचार्य (2010) भरत का संगीत सिद्धांत. बह्मस्पति पब्लिकेशन. पृ.सं.-251
- 4 शर्मा, प्रेमलता, मुकुंद लाठ (1999) गीत-वाद्य-शास्त्रसंग्रह. साहित्य अकादमी. पृ.सं.-112-113
- 5 शर्मा, प्रेमलता, मुकुंद लाठ (1999) गीत-वाद्य-शास्त्रसंग्रह. साहित्य अकादमी. पृ.सं.-112-113
- 6 चौधरी, सुभद्रा (2004) भारतीय संगीत में निबद्ध. दिल्ली : राधा पब्लिकेशंस. पृ.सं.-231
- 7 तैलंग, कृष्ण नारायण (1998) अपनी बात. तराना संग्रह, उ.प्र. : संगीत नाटक अकादमी.
- 8 Halpern, Ida (1976) On the interpretation of
'Meaningless non sensical syllables
' In the music of the pacific North West Indians. Ethnomusicology, Vol. 20 No2.
URL : <https://www.jstor.org/stable/851018>
- 9 Nettl, Bruno (Summer 1954) Text-Music Relationships in ARAPAHO Songs. South Western Journal of Anthropology Vo. 10 No. 2. Published by The University of Chicago Press.
URL : <http://www.jstor.org/stable/3628825>
- 10 Yung, Bell (Setp. 1983) Creative Process in Cantonese Opera III; The Role of Padding Syllables. Ethnomusicology. Vol 27, No. 3. Published by University of III. Press.
<http://www.jstore.org/stable/3628825>

- 11 Touliatos, Diane (Spring 1989) Non Sense Syllables in the Music of the Ancient Greek and Byzantine Traditions. *The Journal of Musicology*. Vol.7, No.-2. Published by University of California Press. <http://www.jstor.org/stable/763769>
- 12 तैलंग, कृष्ण नारायण (1998) अपनी बात. तराना संग्रह, उ.प्र. : संगीत नाटक अकादमी.
- 13 Pattabhisman, Sulochana The Tillana and some of its well known composers. *The Journal of the Madras Music Academy*. Vol. LV. Pg.-149-1500